श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भगवद्गीता द्वादशो अध्याय

पार्थ सारथी ने समझाया धर्म -कर्म का ज्ञान,
मानव जीवन सफल बना ले गीता अमृत मान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भगवद्गीतायां(न्)

द्वादशोऽध्याय:

अर्जुन उवाच

एवं(म्) सततयुक्ता ये, भक्तास्त्वां(म्) पर्युपासते ।

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं(न्), तेषां(ङ्) के योगवित्तमाः ॥ 1 ॥

अर्जुन बोले- जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन-ध्यान में लगे रहकर आप सगुण रूप परमेश्वर को और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म को ही अतिश्रेष्ठ भाव से भजते हैं- उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां(न्), नित्ययुक्ता उपासते ।

श्रद्धया परयोपेतास्- ते मे युक्ततमा मताः ॥ 2 ॥

श्री भगवान बोले- मुझमें मन को एकाग्र करके निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्य- मव्यक्तं(म्) पर्युपासते।

सर्वत्रगमचिन्त्यं(ञ्) च, कूटस्थमचलं(न्) ध्रुवम् ॥ 3 ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं(म्), सर्वत्र समबुद्धयः ।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव, सर्वभूतहिते रताः ॥ 4 ॥

जो लोग अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा सबों के प्रति समभाव रखकर परम सत्य की निराकार कल्पना के अन्तर्गत उस अव्यक्त की पूरी तरह से पूजा करते हैं, वे समस्त लोगों के कल्याण में संलग्न रहकर अंततः मुझे प्राप्त करते हैं। परन्तु जो इन्द्रियों की अनुभूति के परे है, सर्वव्यापी है, अकल्पनीय है, अपरिवर्तनीय है, अचल तथा ध्रुव है, वे संपूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समभाव वाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषा- मव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं(न्), देहवद्भिरवाप्यते ॥ 5 ॥

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्तवाले पुरुषों के साधन में परिश्रम विशेष है क्योंकि देहाभिमानियों द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है ।

ये तु सर्वाणि कर्माणि, मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन, मां(न्) ध्यायन्त उपासते ॥ 6 ॥

परन्तु जो मेरे परायण रहने वाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं।

तेषामहं(म्) समुद्धर्ता, मृत्युसं(म्)सारसागरात् ।

भवामि नचिरात्पार्थ, मय्यावेशितचेतसाम् ॥ 7 ॥

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ ।

मय्येव मन आधत्स्व, मयि बुद्धिं(न्) निवेशय ।

निवसिष्यसि मय्येव, अत ऊर्ध्वं(न्) न सं(म्)शयः ॥ 8 ॥

मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।

अथ चित्तं(म्) समाधातुं(न्), न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।

अभ्यासयोगेन ततो, मामिच्छाप्तुं(न्) धनञ्जय ॥ 9 ॥

यदि तू मन को मुझमें अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है, तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप योग द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिए इच्छा कर ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि, मत्कर्मपरमो भव ।

मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ 10 ॥

यदि तू उपर्युक्त अभ्यास में भी असमर्थ है, तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्ति रूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा ।

अथैतदप्यशक्तोऽसि, कर्तुं(म्) मद्योगमाश्रितः ।

सर्वकर्मफलत्यागं(न्), ततः(ख्) कुरु यतात्मवान् ॥ 11 ॥

यदि मेरी प्राप्ति रूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन को करने में भी तू असमर्थ है, तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर ।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्- ज्ञानाद्ध्यानं(वँ) विशिष्यते ।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्- त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ 12 ॥

मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है ।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां(म्), मैत्रः(ख्) करुण एव च ।

निर्ममो निरहङ्कारः(स्), समदुःखसुखः(ह) क्षमी ॥ 13 ॥

जो पुरुष सब भूतों में द्वेष भाव से रहित, स्वार्थ रहित सबका प्रेमी और हेतु रहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

सन्तुष्टः(स्) सततं(यँ) योगी, यतात्मा दृढनिश्चयः।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्- यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः ॥ 14 ॥

जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चय वाला है- वह मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है ।

यस्मान्नोद्विजते लोको, लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्- मुक्तो यः(स्) स च मे प्रियः ॥ 15 ॥

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है वह भक्त मुझको प्रिय है ।

अनपेक्षः(श्) शुचिर्दक्ष, उदासीनो गतव्यथः।

सर्वारम्भपरित्यागी, यो मद्भक्तः(स्) स मे प्रियः ॥ 16 ॥

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है- वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न काङ्क्षति।

शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान्यः(स्) स मे प्रियः ॥ 17 ॥

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है- वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है ।

समः(श्) शत्रौ च मित्रे च, तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु, समः(स्) सङ्गविवर्जितः ॥ 18 ॥

जो शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दुःखादि द्वंद्वों में सम है और आसक्ति से रहित है ।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी, सन्तुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः(स्) स्थिरमतिर्- भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ 19 ॥

जो निंदा-स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है- वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है ।

ये तु धर्म्यामृतमिदं(यँ), यथोक्तं(म्) पर्युपासते।

श्रद्दधाना मत्परमा, भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ 20 ॥

परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेमभाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसं(वँ)वादे भक्तियोगो द्वादशोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः ॥

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।